काफी ठाठ का ऐतिहासिक विवेचन प्राचीन काल के सन्दर्भ में

अधुना प्रचलित दस ठाठों में काफी ठाठ अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। एतिहासिक दृष्टि से भी काफी ठाठ अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। काफी ठाठ के स्वरों का प्राचीन काल में पाया जाना तथा इसे एक मूलभूत शुद्ध ठाठ के रूप में अपनाया जाना काफी ठाठ की प्राचीनता एवं महत्तावता को सिद्ध करता है। काफी ठाठ के प्राचीन काल के अत्यन्त रोमांचकपूर्ण इतिहास को जानने के लिए हमें वैदिक काल से अपनी यात्रा आरम्भ करनी होगी।

सर्वविदित है भारत का प्राचीनतम इतिहास वेदों में सन्निहित है और वेदों में सामवेद भारतीय संगीत का मूलाधार है। काफी ठाठ के स्वरों के प्राचीन स्वरूप के विषय में सम्पूर्ण जानकारी के लिए वैदिक काल के 'शुद्ध स्वर सप्तक' को जानना अत्यन्त आवश्यक है। सर्वप्रथम वैदिक स्वरों को देखने का प्रयास अपेक्षित है।

वेद ही सर्वप्रथम लिखित रूप में हमारे इतिहास की अति प्राचीन परम्परा के प्रतीक है क्योंकि उससे पहले लिखित रूप में हमारे पास कुछ नहीं था। सौभाग्यवश संगीत विषय पर वेदों ने मौन धारण नहीं किया अपितु अपनी मोक्ष दायिनी ऋचाओं को संगीत द्वारा जन–जन तक पहुँचाया, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण सामवेद है जो पूर्णरूपेण गेय है।

वैदिक स्वरावली अवरोहक्रम से थी, यह सर्वमान्य है। वैदिक युग से ही स्वर की तीन अवस्थाऐं प्राप्त होती हैं–उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित। स्वरों का क्रम ' म ग रे स ध़ नि प़' माना जाता है हालाँकि इस क्रम में विद्वान मतैक्य नहीं है। वैदिक शुद्ध स्वर–सप्तक को जानने के लिए सर्वप्रथम सामवेद में षड्जग्रामीय स्वरों का मूल खोजना होगा। इसके लिए उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित स्वरों की स्थिति को देखना होगा।

उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित स्वरों के नाम ऋग्वेद में प्रयुक्त होते है और ये अवरोहात्मक हैं। वैदिक सामगान के स्वरों की स्थिति जानने के लिए इन तीनों संज्ञाओं को जानना अत्यन्त आवश्यक है।

सप्त स्वर शोध अत्यन्त प्राचीन है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण ऋक्प्रतिशाख्य (खि.पू. 400 के लगभग) में स्पष्टतापूर्वक बताया गया है। आचार्य बृहस्पति ने वैदिक स्वरों को वर्तमान के संदर्भ में वर्णित किया है इनके अनुसार "वागीश्वरी में प्रयोज्य मध्यम, गांधार, ऋषभ और षड्ज, सामवेदियों की भाषा में प्रथम, द्वितीय तृतीय और चतुर्थ कहलाये।" इसके बाद अवरोह की ओर एक नये स्वर का ज्ञान हुआ जिसे उन्होंने मन्द्र कहा, तुंबरू ने इसे धैवत कहा। तत्पश्चात् निषाद स्वर का ज्ञान हुआ, जिसे क्रमानुसार छठा स्थान प्राप्त हुआ। निषाद को 'अतिस्वर' या 'परिस्वार' भी कहा गया। इसके पश्चात मन्द्र स्थान में एक ही अन्य स्वर की प्राप्ति हुई, इसे सातवाँ कहा गया। इसका उच्चारण सभी के लिए सरल नहीं था, अतः इसे प्रथम के ऊपर स्थापित करके क्रुष्ट कहा गया। वीणावादकों के 'म, ग, रि, स, ध़, नि, प़, सामवेदियों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ व सप्तम कहलाये। स्वरों का यह क्रम नारदीय शिक्षा के मत का ही अनुसरण करता है –

"यः सामगानं प्रथमः स वेणोर्मध्यमः स्वरः।
यो द्वितीयः स गांधारस्तृतीयस्त्वृषभः स्मृतः।।
चतुर्थः षड्ज इत्याहुः पंचमो धैवतो भवेत्।
षष्ठो निषादो विज्ञेयः सप्तमः पंचमः स्मृतः।।

यह तो स्वरों का विकास क्रम हुआ। उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित के विषय में अनेकों ग्रन्थो में उल्लेख प्राप्त होते हैं।

"तैत्तिरीय प्रातिशाख्य", वाजसनेयी प्रातिशाख्य" तथा अष्टाध्यायी में उदात्त स्वर को ऊँचा, अनुदात्त स्वर को नीचा माना गया है। स्वरित स्वर को प्रातिशाख्यों एवं पाणिनी के "अष्टाध्यायी" में समाहारः स्वरितः कहा गया है।" वाजसनेयी प्रातिशाख्य में 'उभयवान स्वरित' अंकित है।" "आपिशील–शिक्षा" में स्वरित स्वर को उदात्त एवं अनुदात्त का मेल अथवा समाहार कहा गया है।

नारद ने "नारदीय शिक्षा" के प्रथम प्रपाठक की आँठवी कंडिका के आँठवे श्लोक में कहा है –

"उदात्ते निषाद गान्धारौ (प्रभवतः इति शेषः)
अनुदात्त ऋषभ धैवतो (प्रभवतः इति शेषः)
स्वरित प्रभवाः ह्येते षड्जमध्यमपंचमाः (भवन्तीतिशेषः)"

उपरोक्त नारदीय शिक्षा के श्लोक को आधार मानते हुए पं० ओंकार नाथ ठाकुर ने 'प्रणव–भारती' में षड्ज, मध्यम और पंचम इन तीनों स्वरों का स्वरित स्वरों के रूप में वैदिक गान में उपयोग होता था, ऐसा माना है। इसी प्रकार आर.एम. अग्निहोत्री जी का भी मत है कि षड्ज, मध्यम तथा पंचम ये तीनों स्वरित स्वर हैं।

आचार्य बृहस्पति जी के अनुसार उपरोक्त नारदीय शिक्षा के श्लोक का भाव यह निकलता है कि जब उदात्त स्वर परवर्ती हो, तब निषाद और गांधार का जन्म होता है (गांधार से परवर्ती 'उदात्त' मध्यम है और निषाद से परवर्ती उदात्त 'षड्ज' है। अनुदात्त ऋषभ

धैवतो (प्रभवतः इति शेषः) अर्थात् जब अनुदात्त स्वर परवर्ती हो तो ऋषभ और धैवत का जन्म होता है। (ऋषभ से परवर्ती 'अनुदात्त' गांधार है और धैवत का परवर्ती 'अनुदात्त' निषाद है)।

स्वरित प्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपंचमाः (भवन्तीतिशेषः) अर्थात् जब स्वरित स्वर परवर्ती हो, तब षड्ज, मध्यम और पंचम का जन्म होता है षड्ज से परवर्ती 'स्वरित' ऋषभ, मध्यम से परवर्ती 'स्वरित' मध्यम ग्रामीय त्रिश्रुतिक ऋषभ और षड्जग्रामीय पंचम से परवर्ती 'स्वरित' धैवत होता है।

शिक्षा ग्रन्थों के पश्चात् अभिनव भारतीकार आचार्य अभिवनगुप्त के अनुसार–

"चतुःश्रुतिरूदात्त उच्चैस्त्वात्, द्विश्रुतिरनुदात्त, नीचैस्तवात्, त्रिश्रुतिः स्वरितः मध्यवर्तितया समाहारत्वात्। तथा हि–स्वरित एवं कम्पित्वं व्यवहरन्ति श्रोत्रिया।"

अर्थात् ऊँचे होने के कारण चतुश्रुति स्वर उदात्त है, नीचे होने के कारण द्विश्रुति स्वर अनुदात्त है, समाहारगुण से युक्त और मँझोले होने के कारण त्रिश्रुति स्वर स्वरित हैं, श्रोतीय (सामगान करने वाले) लोग 'स्वरित' में ही कंपितत्व का व्यवहार करते हैं। इस प्रकार जहाँ एक ओर नारदीय–शिक्षा में निषाद, गांधार को उदात्त, ऋषभ, धैवत को अनुदात्त तथा षड्ज, मध्यम व पंचम स्वरों को स्वरित माना गया वहीं दूसरी ओर आचार्य अभिनव गुप्त ने उदात्त स्वर चतुःश्रुतिक, अनुदात्त स्वर द्विश्रुतिक व स्वरित स्वर त्रिश्रुतिक माने।

श्रीमती सुलोचना बृहस्पति जी के अनुसार शिक्षा ग्रन्थों में निम्नलिखित प्रक्षिप्त पंक्तियाँ लोगों को चक्कर में डालती है।

"उदात्ते निषाद गान्धारौवनुदात्त ऋषभ धैवतौ।
स्वरित प्रभवा ह्येते षड्ज मध्यम पंचमाः।।

उनके अनुसार उक्त श्लोक में क्रम–भङ्ग दोष है। अतः यह किसी ऋषि या आचार्य की रचना नहीं है। दूसरा यदि यह प्रलाप मूलतः शिक्षा–ग्रन्थों में होता तो आचार्य अभिनव गुप्त का ध्यान इस ओर अवश्य जाता है। उनके युग तक शिक्षा ग्रन्थ दूषित नहीं हुए थे।

यहाँ यह चिन्तनीय है कि यदि शिक्षा ग्रन्थों के अनुसार उदात्त, अनुदात्त, एवं स्वरित स्वर की परिभाषा देखें तो उदात्त ऊँचा अनुदात्त नीचा व स्वरित उच्चता तथा नीचता का समाहार कहा गया है। इसके साथ–साथ यदि संवाद तत्व पर विचार किया जाये तो उचित होगा क्योंकि हमारा भारतीय संगीत संवाद तत्व पर ही तो कायम है। इस प्रकार देखा जाये तो चतुःश्रुतिक अर्थात् षड्ज, मध्यम और षड्जग्रामीय पंचम 'उदात्त' हैं क्योंकि अपने पूर्ववर्ती स्वर की अपेक्षा इन स्वरों की ऊँचाई द्विश्रुतिक या त्रिश्रुतिक स्वरों की ऊँचाई की अपेक्षा अधिक है। द्विश्रुतिक स्वर गांधार और निषाद अपने पूर्ववर्ती स्वरों से तो ऊँचे है परन्तु उनकी ऊँचाई चतुःश्रुतिक अथवा त्रिश्रुतिक स्वरों की ऊँचाई की अपेक्षा नीची है, इसी निचाई के कारण ये 'अनुदात्त' है। त्रिश्रुतिक स्वर 'स्वरित' हैं, क्योंकि पूर्ववर्ती स्वर की अपेक्षा इनकी ऊँचाई द्विश्रुतिक स्वरों की ऊँचाई से अधिक व चतुःश्रुतिक स्वरों की ऊँचाई से कम है। इस प्रकार उच्चता और नीचता का समाहार होने के कारण ऋषभ और धैवत स्वर गाँवर्ध में स्वरित हैं।

इस प्रकार वैदिक स्वरावली को देखने पर उपरोक्त कथन सार्थक सिद्ध भी होता है –

म	ग	रि	स	ध़	नि	प़
उदात्त	अनुदात्त	स्वरित	उदात्त	अनुदात्त	स्वरित	उदात्त

नारदीय शिक्षा में दिये गये श्लोक "यः सामगानां प्रथमः स वेणोर्मध्यमः स्वरः" के अनुसार सामवेदियों का प्रथम स्वर मध्यम है तथा उपरोक्त स्वरावली पूर्णतः ग्रन्थोक्त प्रमाणित है।

प्रायः एकमत होकर विद्वानों ने जिस उपरोक्त वर्णित नारदीय शिक्षा के श्लोक को अपने मत का आधार बनाकर षड्ज, मध्यम व पंचम को स्वरित स्वर माना वह श्लोक व्याकरण की दृष्टि से दोषपूर्ण है इसी के साथ–साथ यह श्लोक केवल नारदीय शिक्षा में ही नहीं अपितु पाणिनीय शिक्षा में भी प्राप्त होता है परन्तु यदि ध्यानपूर्वक निरिक्षण किया जाता तो पता चलता कि जिस पाणिनीय शिक्षा से यह श्लोक उद्धृत किया गया है वह मूल पाणिनीय शिक्षा का नहीं अपतु किसी अन्य विद्वान की रचना है जिसने पाणिनीय शिक्षा के नाम से अपना ग्रन्थ रचा उसमें मूल पाणिनीय–शिक्षा के श्लोकों के साथ अपने स्वरचित श्लोकों को भी सम्मिलित कर दिया जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण वह स्वयं अपनी कृति में देता है –

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मत यथा।
शास्त्रानुपूर्व्य तद्विद्याद्ययोक्तं लोकवेदयोः।।1।।

अर्थात् अब मैं पाणिनी के मतानुसार 'शिक्षा' नामक वेदांग का प्रवचन करने जा रहा हूँ। इस पाणिनीय मत को शास्त्रोपदेष्टाओ की परम्परा से प्राप्त लोक वेदानुकूल समझना चाहिए। इसी संदर्भ में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी द्वारा लिखित पुस्तक 'वर्णोच्चारणशिक्षा' में भी इसी मत को स्वीकारा गया है–"जो अपाणिनीय शिक्षा को पाणिनीकृतामान के पाठ किया करते और उसको वेदांग में गिनते हैं वे इतना भी नहीं जानते कि 'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि मतं यथा' अर्थ मैं, जैसा पाणिनी मुनि की शिक्षा का मत है, वैसी ही शिक्षा करूँगा।।" इससे स्पष्ट है यह पाणिनी मुनि द्वारा रचित श्लोक ही नहीं। मूल पाणिनीय शिक्षा सूत्र रूप में लिखी गयी न कि श्लोक रूप में तथा साथ ही साथ यह श्लोक व्याकरण की दृष्टि से अनुष्टुप छन्द के लक्षण का पूर्णरूपेण निर्वाह नहीं करता तथा संगीत की दृष्टि से भी इसमें दोष है। पहले चरण में निषाद–गांधार अवरोही क्रम से हैं और दूसरे चरण में "ऋषभ–धैवत" आरोही क्रम में हैं। चौथे चरण में षड्ज मध्यम पंचम आरोही क्रम में हैं अतः इस पाठ में क्रम–भङ्ग दोष है। इसके अतिरिक्त नारदीय शिक्षा में यदि यह श्लोक मिलता भी है तो किसी

ऋषि या आचार्य की रचना नहीं कही जा सकती फिर किस आधार पर षड्ज, मध्यम, पंचम को स्वरित, निषाद–गान्धार को उदात्त व ऋषभ–धैवत को अनुदात्त स्वीकार कर लिया?

अतएव म ग रे स ध नि प अथवा म ग रे स नि ध प ही वैदिक स्वरावली सिद्ध होती है। आचार्य बृहस्पति आज वागीश्वरी में प्रयुक्त स्वरावली को वैदिक स्वरावली मानते हैं, उपरोक्त नारदीय शिक्षा में कही गई उदात्त, अनुदात्त व स्वरित आदि से यह स्वरों की स्थिति मेल नहीं खा सकती। उपरोक्त स्वरावली के स्वर काफी ठाठ के स्वरों से मेल खाते हैं। इस मत का समर्थन करते हुए डॉ ठाकुर जयदेव सिंह जी का कहना है कि शताब्दियों की परम्परा से आज तक जो सामवेद का गान चला आ रहा है उससे यही पता चलता है कि सामवेद के स्वरों का स्वरूप और स्थान वही रहा है जो भरत के समय तक शुद्ध–ग्राम के स्वरों का था अर्थात् सामवेद के स्वर हिन्दुस्तानी संगीत के 'काफी' और कर्नाटक संगीत के 'खरहरप्रिया' के स्वरों से मिलते जुलते हैं।

इनके अतिरिक्त श्री वी०एन० गोस्वामी , डा० श्री शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे जी , डॉ० एम० विजयालक्ष्मी जी ने भी प्राचीन शुद्ध स्वर सप्तक, आधुनिक काफी ठाठ सदृश माना है। इसी के साथ–साथ कुछ तथ्य सामने आते हैं एक तो यह कि वैदिक काल में संगीत पर्याप्त विकासशील था तथा शुद्ध एवं विकृत स्वरों के साथ वैदिक काल में ग्राम मूर्च्छना का बीजारोपण हो चुका था, यद्यपि इनका प्रयोग प्रचार में दृष्टिगोचर तो नहीं होता अर्थात् प्रयोग अभी शुरू नहीं हुआ था। इसका प्रमाण हमें कात्यायन श्रोत्रसूत्र गाथाओं में प्राप्त होता है।

"तस्यै प्रजाजेषु तायमानेषु ब्राहमणो वीणागाथी दक्षिणत
उत्तरामद्रामुदाध्नस्तिस्त्रः स्वयं संमृता गाथा गायति।"

अश्वमेघयज्ञ के अन्तर्गत सामगान के साथ गाथागान भी प्रचलित रहा है अतः अश्वमेघ यज्ञ के अन्तर्गत जब इष्टियों का सम्पादन होता है तब यज्ञमण्डप में दक्षिण की ओर बैठा ब्राह्मण गायक यज्ञमान के यज्ञ तथा दान की प्रशंसा में तीन स्वरचित गाथा गाता है इस गाथा का गान 'उत्तरमंद्रा' वीणा में बतलाया गया है।

यहाँ 'उत्तरामंद्रा' से तात्पर्य सम्भवतः वीणा के विशिष्ट अवरोही क्रम से रहा है। इस स्थिति में भरतकालीन मूर्च्छना प्रणाली के बीज इसमें देखे जा सकते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में अपने प्राचीनकाल के संस्कृत ग्रन्थों पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' व पं० शारंगदेव कृत 'संगीत–रत्नाकर' संगीत के आधार ग्रन्थ माने जाते हैं। लगभग सभी विद्वानों ने वैदिक स्वर–सप्तक व इन दोनों ग्रन्थों के स्वर सप्तक में एकरूपता मानी है। पं० भातखण्डे जी का भी यही विचार है कि नाट्यशास्त्र आदि ग्रन्थों का निर्णय करने के लिए इसे सामवेद तक ले जाना चाहिए। सर्वविदित है प्राचीनकाल में तीन ग्राम–षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम व गान्धार ग्राम का उल्लेख मिलता है जिनमें से षड्ज व मध्यम ग्राम ही प्रचार में थे।
भरतकालीन स्वर सप्तक किस प्रकार अक्षुण्णरीति नीति से वैदिक काल से चला आ रहा था इसके लिए सर्वप्रथम भरत के षड्ज ग्राम को देखेंगे। प्राचीन काल में षड्जग्रामिक स्वर व्यवस्था निम्न सिद्धान्त पर स्थापित की गयी –

"चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्ज मध्यम पंचमा।
द्वै द्वै निषादगांधारी तिस्त्री ऋषभधैवती।।

षड्जग्रामिक सप्त स्वरों की श्रुति संख्या अनुसार प्राचीन स्वर व्यवस्था –

4सा – 3रे – 2ग – 4म – 4प – 3ध – 2नि
अब यहाँ कुछ प्रश्न मन में उठते हैं

1. कि प्राचीनों की दृष्टि में आदिम या मूल शुद्ध स्वर सप्तक की क्या विशेषताऐं हैं?
2. ये विशेषताऐं किस स्वर सप्तक में विद्यमान थीं या हैं?
3. काफी के परिप्रेक्ष्य में कि क्या आधुनिक काफी के स्वर प्राचानों की दृष्टि अनुसार शुद्ध स्वर–सप्तक की विशेषताऐं रखते हैं?
प्रथम प्रश्न के उत्तर के लिए विभिन्न विद्वानों यथा ठाकुर जयदेव सिंह , श्री निवास ऐयंगर जी के मतानुसार भरत व शारंगदेव के शुद्ध स्वरों के स्थान सामवेदियों के शुद्ध स्वर सप्तक के ही समान थे।

सामगान का जो पहला स्वर होता था वह आरम्भिक स्वर माना जाता था–"प्रत्येकं षड्ज भावेन" यह सामगान का नियम था अतः 'म ग रे स नि ध प' में से प्रत्येक को आरम्भिक स्वर मानकर चलने से भिन्न–भिन्न स्वरों की प्राप्ति होती थी, जो मूर्च्छना का आधार बना तथा जातियों व रागों का भी आधार बना। पीछे बताया जा चुका है कि सामगान में प्रयुक्त स्वर–सप्तक आधुनिक काफी ठाठ के स्वरों के स्थूल रूप से सदृश था और यही परम्परा अक्षुण्ण रीति से चली आ रही थी तो भरत के षड्जग्रामिक शुद्ध स्वर–सप्तक में भी इसके प्रमाण मिलना सम्भव है। अतएव प्रथम प्रश्न के उत्तर में भारतीय संगीत की दृष्टि में मूल, आदिम या शुद्ध स्वर–सप्तक वह है जिसका मध्यवर्ती स्वर, सप्तक के आदिम और अंतिम स्वर के ठीक बीचों बीच में हो। सप्तक के आदिम और अंतिम त्रिकों का निर्माण क्रमशः चतुःश्रुतिक, त्रिश्रुतिक व द्विश्रुतिक स्वरों से हुआ हो ये दोनों त्रिक परस्पर संवादी हों और इस सप्तक में त्रयोदशश्रुतिक अंतर तीन बार, नवश्रुतिक अंतर दो बार व सप्तश्रुतिक अंतर एक बार आए।

स रे ग म प ध नि

इस आधार पर अब यह देखें कि षड्ज–ग्राम की प्राचीन शुद्ध स्वर सप्तक में शुद्धता क्या है? जिसका ग्रामणी स्वर (ग्राम का व्यवस्थापक या प्रमुख स्वर) किसी भी अन्य स्वर की अपेक्षा परिमाण में कम न हो अर्थात त्रिश्रुतिक या द्विश्रुतिक न होकर चतुःश्रुतिक हो और उसके पश्चादवर्ती स्वर क्रमशः त्रिश्रुतिक और द्विश्रुतिक हों। अब शुद्ध स्वर सप्तक की शुद्धता को भरतोक्त षड्जग्राम के साथ देखें तो–

4 सा – 3 रे – 2 ग – 4 म – 4 प – 3 ध – 2 नि

षड्ज ग्राम की आधा मूर्च्छना उत्तरमंद्रा है जिसका आरम्भिक स्वर ग्राम का आरम्भिक स्वर है। श्रुति विधान भी ठीक षड्ज–ग्राम के स्वरों से मिलता जुलता है। इस अर्थ में "इसी मूर्च्छना को भरत के षड्जग्रामिक शुद्ध स्वर सप्तक की प्रतिनिधिक मानना संगत प्रतीत होता है।

अतएव 4–3–2–4–4–3–2 वाली श्रुति–स्वर व्यवस्था ही वैदिक काल से लेकर भरतकाल तक अविच्छिन्न चली आ रही थी और यही स्वर सप्तक भरतोक्त उत्तरमंद्रा से मेल खाता है। इस परिप्रेक्ष्य में अपने तृतीय प्रश्न के साथ उपरोक्त दोनों प्रश्नों को जोड़कर देखें तो अधिकतर विद्वानों ने षड्जग्राम की आधा मूर्च्छना 'उत्तरमंद्रा' ही में काफी ठाठ के स्वर सन्निहित माने है। इस प्रकार काफी ठाठ के स्वर वैदिक काल में तथा प्राचीन काल में मूल स्वर सप्तक के ही स्वर थे। इस परिप्रेक्ष्य में यह कह देना उचित होगा कि हमारा भारतीय संगीत संवाद तत्व पर आधारित है। अतः षड्ग्रामिक सप्त स्वर भरत के कथनानुसार त्रयोदश श्रुत्यन्तर से परस्पर संवादी है। अतः इन संवादों के सिद्ध होने पर ही षड्जग्रामिक स्वर स्वयं सिद्ध हो जायेंगे। यहां यह भी कह देना उचित होगा कि प्राचीन षड्जग्रामिक स्वरों को आधुनिक काफी के स्वर कहते हैं। परन्तु वास्तव में यह स्थूल मान है क्योंकि अधुना काफी में चतुःश्रुतिक ऋषभ, का ही प्रयोग करते हैं किन्तु यदि तानपुरे के पंचम को मध्यम बनाकर काफी ठाठ के स्वर गायेंगे तो त्रिश्रुति ऋषभ धैवत के साथ पूर्ण रूप से प्राचीन शुद्ध स्वर सप्तक सुनाई देगा। स्थूल कान उसे काफी ही समझेंगे, किन्तु आधुनिक काफी के चतुःश्रुतिक ऋषभ के स्थान पर इसमें त्रिश्रुति ऋषभ ही होगा।

वैदिक स्वरों की काफी थाट के स्वरों से सन्निकटता का यदि व्यवहारिक दृष्टि से अवलोकन किया जाये तो मध्यम स्वर भी अपना बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सामगान का प्रथम स्वर मध्यम माना गया वहीं भरत ने इसे अविनाशी व अविलोपी कहा है। सामसप्तक परम्परा भरतकाल तक अविच्छिन्न रूप से चली आ रही थी वहीं दूसरी ओर इससे वीणा का प्रभाव भी झलकता है। काफी ठाठ के स्वरों की प्राचीन शुद्ध स्वर सप्तक के रूप में जो एकरूपता पायी गयी है उसमें मध्यम स्वर महत्वपूर्ण है। सर्वविदित है कि मध्यम स्वर से लेकर अवरोहक्रम से सातों स्वरों का विवर्तन हुआ। इस विवर्तन में काफी ठाठ की प्रधानता मानी गयी क्योंकि एक तो अवरोह क्रम में कोमल गांधार व निषाद का प्रयोग अधिक स्वाभाविक था दूसरा वीणा के तार पर जो स्वर स्थापना विभागीय नियम द्वारा की गयी उसमें कोमल गांधार व निषाद स्वाभाविक रीति से प्राप्त हुआ। अवरोह में कोमल गांधार का मनन जितना आसान था उतना शुद्ध गांधार का नहीं। शुद्ध गांधार तारवाद्यों की प्रगति के साथ विकास के स्तर में अपनाया गया।

संदर्भ

1. आचार्य बृहस्पति, संगीत चिन्तामणि–भाग–1, पृ0–45
2. नारदीय शिक्षा (1–5–1,2)
3. पं० ओंकारनाथ ठाकुर, प्रणवभारती, पृ0 109
4. आर०एम० अग्निहोत्री, सामसंगीत का मूल स्वर–सप्तक, संगीत फरवरी–1989, पृ069
5. आचार्य बृहस्पति, संगीत चिन्तामणि भाग 1, पृ047
6. आचार्य अभिनवगुप्त, अभिनव भारती, खंड चतुर्थ, पृ04
7. आचार्य बृहस्पति, संगीत चिन्तामणि भाग–2, श्रीमति सुलोचना बृहस्पति, वेद औरागान, पृ0220
8. डॉ० बलदेव सिंह मेहरा, वैदिकी, पाणिनीय शिक्षा, पृ0305
9. डॉ ठाकुर जयदेव सिंह, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ02
10. डॉ ठाकुर जयदेव सिंह, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ052
11. श्री वी०एन० गोस्वामी, संगीत–तोड़ी थाट अंक, जनवरी 1960, पृ0 8
12. डॉ० शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 96, 97
13. डॉ० एम० विजयालक्ष्मी, संगीत निबन्धमाला, वैदिक युग में संगीत, पृ0 24
14. शतपथ ब्राह्मण, 13/4–2–8
15. पं० विष्णु नारायण भातखण्डे, भातखण्डे स्मृति ग्रन्थ, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 412
16. पं० व्यंकटमखी, चतुर्दण्डि प्रकाशिका, 3/2, –3
17. डॉ० ठाकुर जयदेव सिंह, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0–52
18. श्री निवास एयंगर, संग्रह चूड़ामणि, अड्यार संस्करण, पृ0–7, 8
19. डॉ० शरच्चंद्र श्रीधर परांजपे, संगीत काफी ठाठ अंक – पृ0 28
20. पं० ओंकारनाथ ठाकुर, प्रणव भारती, पृ0–91

डॉ० सरबजीत कौर

संगीत प्रवक्ता आरोही मॉडल सी०सै०स्कूल

तोशाम (भिवानी)